

## Chapter दो

### दक्ष द्वारा शिवजी को शाप

विदुर उवाच

भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षो दुहितृवत्सलः ।

विद्वेषमकरोत्कस्मादनादत्यात्मजां सतीम् ॥ १ ॥

#### शब्दार्थ

विदुरः उवाच—विदुर ने कहा; भवे—शिव के प्रति; शीलवताम्—शीलवानों में; श्रेष्ठे—सर्वोत्तम; दक्षः—दक्ष ने; दुहितृ-वत्सलः—अपनी पुत्री के प्रति स्नेहिल; विद्वेषम्—शत्रुता; अकरोत्—प्रदर्शित किया; कस्मात्—किस हेतु; अनादृत्य—अनादर करके; आत्मजाम्—अपनी पुत्री; सतीम्—सती को।

विदुर ने पूछा : जो दक्ष अपनी पुत्री के प्रति इतना स्नेहवान् था वह शीलवानों में श्रेष्ठतम भगवान् शिव के प्रति इतना ईर्ष्यालु क्यों था ? उसने अपनी पुत्री सती का अनादर क्यों किया ?

तात्पर्य : चतुर्थ स्कन्ध के द्वितीय अध्याय में शिवजी तथा दक्ष के बीच मनमुटाव का वर्णन किया गया है, जो दक्ष द्वारा समग्र ब्रह्माण्ड की शान्ति के लिए विशाल यज्ञ के आयोजन के कारण उत्पन्न हुआ। यहाँ पर शिवजी को भद्र पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ बताया गया है, क्योंकि वे किसी के प्रति द्वेषभाव नहीं रखते, वे सभी जीवों पर समभाव रखते हैं और उनमें अन्य गुण भी हैं। शिव शब्द का अर्थ है 'सर्व मंगलमय'। कोई भी शिव का शत्रु नहीं हो सकता, क्योंकि वे इतने शान्त तथा विरक्त हैं कि अपने रहने के लिए घर भी नहीं बनाते, वरन् अपने को सांसारिक वस्तुओं से अलग रखते हुए वृक्ष के नीचे रहते हैं। शिवजी का व्यक्तित्व सर्वोत्तम शीलवान पुरुष का द्योतक है। तो फिर वही दक्ष जिसने अपनी प्रिय पुत्री को ऐसे शीलवान् व्यक्ति को समर्पित किया था, उसके प्रति इतनी शत्रुता क्यों प्रदर्शित की कि सती को अपना शरीर ही त्यागना पड़ा ?

कस्तं चराचरगुरुं निर्वैरं शान्तविग्रहम् ।

आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतो दैवतं महत् ॥ २ ॥

#### शब्दार्थ

कः—कौन ( दक्ष ); तम्—उस ( शिव ) को; चर-अचर—जड़ जंगम ( सारा संसार ); गुरुम्—गुरु; निर्वैरम्—शत्रुतारहित; शान्त-विग्रहम्—शान्त व्यक्तित्व वाला; आत्म-आरामम्—अपने आप में संतुष्ट रहने वाला; कथम्—कैसे; द्वेष्टि—घृणा करता है; जगतः—ब्रह्माण्ड का; दैवतम्—देवता; महत्—महान।

भगवान् शिव समग्र संसार के गुरु, शत्रुतारहित, शान्त और आत्मतुष्ट व्यक्ति हैं। वे देवताओं

में सबसे महान् हैं। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि ऐसे मंगलमय व्यक्ति के प्रति दक्ष वैरभाव रखता ?

तात्पर्य : शिव को यहाँ पर चराचर-गुरु अर्थात् चर और अचर (जड़-जंगम) का गुरु कहा गया है। कभी-कभी उन्हें भूतनाथ कहा जाता है, जिसका अर्थ है, “मन्द बुद्धि लोगों का आराध्य देव।” कभी-कभी भूत का अर्थ ‘प्रेत’ लगाया जाता है। शिवजी भूतों तथा असुरों को सुधारने का भार लेते हैं, दैव पुरुषों की बात ही नहीं। अतः वे मन्द बुद्धि एवं आसुरी व्यक्तियों तथा उच्चकोटि के विद्वान वैष्णवों के गुरु हैं। यह भी कहा गया है, वैष्णवानां यथा शम्भुः—शम्भु अर्थात् शिव वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ हैं। एक ओर वे मन्द बुद्धि असुरों के आराध्य हैं, तो दूसरी ओर वैष्णवों या भक्तों में सर्वश्रेष्ठ हैं और उनका सम्प्रदाय चलता है, जिसे रुद्र-सम्प्रदाय कहते हैं। यदि वे वैर करें या कभी-कभी क्रुद्ध हों तो भी ऐसे पुरुष से द्वेष नहीं करना चाहिए। इसीलिए विदुर ने विस्मयपूर्वक पूछा कि तो फिर दक्ष ने ऐसा क्यों किया? दक्ष कोई सामान्य व्यक्ति न थे। वे प्रजापति हैं और जनसंख्या को बढ़ाने का भार उन पर है और उनकी सभी पुत्रियाँ, विशेष रूप से सती अत्यन्त सम्मान्य हैं। सती शब्द का अर्थ है “परम साध्वी।” जब कभी सतीत्व की चर्चा होती है, तो दक्ष कन्या शिव की पत्नी सती का नाम सबसे पहले लिया जाता है। इसीलिए विदुर को अत्यन्त आश्चर्य हो रहा था। उन्होंने सोचा, “दक्ष इतने महान् पुरुष और सती के पिता हैं और शिवजी सबों के गुरु हैं, तो फिर उनमें इतना वैरभाव कैसे सम्भव हुआ कि अत्यन्त साध्वी देवी सती को उनके इस झगड़े के कारण अपने प्राण देने पड़े ?

एतदाख्याहि मे ब्रह्मन्जामातुः श्वशुरस्य च ।

विद्वेषस्तु यतः प्राणांस्तत्यजे दुस्त्यजान्सती ॥ ३ ॥

#### शब्दार्थ

एतत्—इस प्रकार; आख्याहि—कृपया कहो; मे—मुझसे; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; जामातुः—दामाद ( शिव ); श्वशुरस्य—ससुर ( दक्ष ) का; च—तथा; विद्वेषः—झगड़ा; तु—लेकिन; यतः—जिसके कारण; प्राणान्—अपना प्राण; तत्यजे—त्याग दिया; दुस्त्यजान्—जिसको त्यागना दुष्कर होता है; सती—सती ने।

हे मैत्रेय, मनुष्य के लिए अपने प्राण त्याग पाना अत्यन्त कठिन है। क्या आप मुझे बता सकेंगे कि ऐसे दामाद तथा श्वसुर में इतना कटु विद्वेष क्यों हुआ जिससे महान् देवी सती को अपने प्राण त्यागने पड़े ?

मैत्रेय उवाच

पुरा विश्वसृजां सत्रे समेताः परमर्षयः ।  
तथामरगणाः सर्वे सानुगा मुनयोऽग्नयः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय मुनि ने कहा; पुरा—पहले (स्वायंभुव मनु के काल में); विश्व-सृजाम्—ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने वालों के; सत्रे—यज्ञ में; समेताः—एकत्र हुए; परम-ऋषयः—बड़े-बड़े ऋषि; तथा—और भी; अमर-गणाः—देवता; सर्वे—सभी; स-अनुगाः—अपने-अपने अनुयायियों सहित; मुनयः—विचारक, चिन्तक; अग्नयः—अग्निदेव ।

मैत्रेय ने कहा : प्राचीन समय में एक बार ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने वाले प्रमुख नायकों ने एक महान् यज्ञ सम्पन्न किया जिसमें सभी ऋषि, चिन्तक ( मुनि ), देवता तथा अग्निदेव अपने-अपने अनुयायियों सहित एकत्र हुए थे ।

तात्पर्य : विदुर द्वारा पूछे जाने पर मैत्रेय मुनि शिव तथा दक्ष के मनोमालिन्य का विस्तार से वर्णन करने लगे जिसके कारण सती को प्राण देने पड़े । इस प्रकार उस महान् यज्ञ का इतिहास प्रारम्भ होता है, जिससे ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने वाले नायकों ने, जिनके नाम मरीचि, दक्ष तथा वसिष्ठ हैं, सम्पन्न किया । इन महापुरुषों ने एक विशाल यज्ञ की व्यवस्था की जिसमें अपने-अपने अनुयायियों सहित इन्द्र तथा अग्निदेव जैसे देवता एकत्रित हुए । ब्रह्मा तथा शिवजी भी उपस्थित हुए ।

तत्र प्रविष्टमृषयो दृष्टार्कमिव रोचिषा ।  
भ्राजमानं वितिमिरं कुर्वन्तं तन्महत्सदः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; प्रविष्टम्—प्रविष्ट हुआ; ऋषयः—ऋषिगण; दृष्टा—देखकर; अर्कम्—सूर्य; इव—सदृश्य; रोचिषा—कान्ति से; भ्राजमानम्—चमकते हुए, देदीप्यमान; वितिमिरम्—अंधकार से रहित; कुर्वन्तम्—करते हुए; तत्—वह; महत्—महान; सदः—सभा ।

जब प्रजापतियों के नायक दक्ष ने सभा में प्रवेश किया, तो सूर्य के तेज के समान चमकीली कान्ति से युक्त उसके शरीर से सारी सभा प्रकाशित हो उठी और उसके समक्ष सभी समागत महापुरुष तुच्छ लगने लगे ।

उदतिष्ठन्सदस्यास्ते स्वधिष्णयेभ्यः सहाग्नयः ।  
ऋते विरिञ्चां शर्वं च तद्भासाक्षिप्तचेतसः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

उदतिष्ठन्—खड़े हुए; सदस्याः—सभा के लोग; ते—वे; स्व-धिष्येभ्यः—अपने-अपने स्थानों पर; सह-अग्नयः—अग्नि देवों समेत; ऋते—के अतिरिक्त; विरिञ्चाम्—ब्रह्मा; शर्वम्—शिव; च—तथा; तत्—उसका ( दक्ष का ); भास—कान्ति से; आक्षिप्त—प्रभावित; चेतसः—जिनके मन ।

ब्रह्मा तथा शिवजी के अतिरिक्त, दक्ष की शारीरिक कान्ति ( तेज ) से प्रभावित होकर उस सभा के सभी सदस्य तथा सभी अग्निदेव, उसके सम्मान में अपने आसनों से उठकर खड़े हो गये ।

सदसस्पतिभिर्दक्षो भगवान्साधु सत्कृतः ।

अजं लोकगुरुं नत्वा निषसाद तदाज्ञया ॥ ७ ॥

#### शब्दार्थ

सदसः—सभा के; पतिभिः—नायकों द्वारा; दक्षः—दक्ष; भगवान्—समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी; साधु—ढंग से; सत्-कृतः—सम्मानित हुआ; अजम्—अजन्मा ( ब्रह्मा ) को; लोक-गुरुम्—जगद्गुरु; नत्वा—प्रणाम करके; निषसाद—बैठ गया; तत्-आज्ञया—उनकी ( ब्रह्मा की ) आज्ञा से ।

उस महती सभा के अध्यक्ष ब्रह्मा ने दक्ष का समुचित रीति से स्वागत किया। ब्रह्माजी को प्रणाम करने के पश्चात् उनकी आज्ञा पाकर दक्ष ने अपना आसन ग्रहण किया।

प्राङ्निषण्णं मृडं दृष्ट्वा नामृष्यत्तदनाहतः ।

उवाच वामं चक्षुर्भ्यामभिवीक्ष्य दहन्निव ॥ ८ ॥

#### शब्दार्थ

प्राक्—पहले से; निषण्णम्—बैठा; मृडम्—शिवजी को; दृष्ट्वा—देखकर; न अमृष्यत्—सहन न कर सका; तत्—उनके ( शिव ) द्वारा; अनाहतः—आदर न किया जाकर; उवाच—कहा; वामम्—बेईमान; चक्षुर्भ्याम्—दोनों नेत्रों से; अभिवीक्ष्य—देखते हुए; दहन्—ज्वलित; इव—मानो ।

किन्तु आसन ग्रहण करने के पूर्व शिवजी को बैठा हुआ और उन्हें सम्मान न प्रदर्शित करते हुए देखकर दक्ष ने इसे अपना अपमान समझा। उस समय दक्ष अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसकी आँखें तप रही थीं। उसने शिव के विरुद्ध अत्यन्त कटु शब्द बोलना प्रारम्भ किया।

तात्पर्य : दक्ष के दामाद होने के कारण यह आशा की जाती थी कि शिवजी अपने श्वसुर के सम्मानार्थ अन्यो के साथ उठकर खड़े होंगे, किन्तु भगवान् ब्रह्मा तथा शिव प्रमुख देवता हैं, अतः उनका पद दक्ष से बड़ा है। तो भी दक्ष इसे सहन न कर सका और उसने इसे अपने दामाद द्वारा अपना अपमान समझा। इसके पहले से ही वह शिवजी से सन्तुष्ट न था, क्योंकि शिवजी निर्धन दिखाई देते थे और उनका वेष अत्यन्त दरिद्र था।

श्रूयतां ब्रह्मर्षयो मे सहदेवाः सहाग्नयः ।  
साधूनां ब्रुवतो वृत्तं नाज्ञानान्न च मत्सरात् ॥ ९ ॥

### शब्दार्थ

श्रूयताम्—सुनो; ब्रह्म-ऋषयः—हे ब्रह्मर्षियों; मे—मुझको; सह-देवाः—हे देवताओ; सह-अग्नयः—हे अग्नि देवो; साधूनाम्—सज्जनों के; ब्रुवतः—बोलते हुए; वृत्तम्—व्यवहार, आचार; न—नहीं; अज्ञानात्—अज्ञान से; न च—तथा नहीं; मत्सरात्—द्वेष से।

हे समस्त उपस्थित ऋषियो, ब्राह्मणो तथा अग्निदेवो, ध्यानपूर्वक सुनो क्योंकि मैं शिष्टाचार के विषय में बोल रहा हूँ। मैं किसी अज्ञानता या ईर्ष्या से नहीं कह रहा।

तात्पर्य : शिव के विरुद्ध बोलते हुए दक्ष ने यह कहकर सभा को अत्यन्त चतुरतापूर्वक शान्त करना चाहा कि वह सज्जनों के आचार (शिष्टाचार) के विषय में बोलने जा रहा है, क्योंकि इससे सभा में उपद्रव होने की आशंका थी और लोग अप्रसन्न हो सकते थे, क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि कोई अभद्र पुरुष भी अपमानित हो। दूसरे शब्दों में, उसे यह पता था कि वह शिव के विरुद्ध बोल रहा था, जो आचरण निष्कलुष थे। जहाँ तक ईर्ष्या-द्वेष की बात है, वह पहले से ही शिवजी से द्वेष रखता था, फलतः उसने अपने द्वेष को प्रकट नहीं होने दिया। यद्यपि वह इस प्रकार बोल रहा था, जैसे उसे कुछ ज्ञात न हो, किन्तु यह कह कर कि वह किसी ईर्ष्या-द्वेषवश नहीं बोल रहा, अपनी बात को छिपा लेना चाहता था।

अयं तु लोकपालानां यशोघ्नो निरपत्रपः ।  
सद्भिराचरितः पन्था येन स्तब्धेन दूषितः ॥ १० ॥

### शब्दार्थ

अयम्—यह ( शिव ); तु—लेकिन; लोक-पालानाम्—ब्रह्माण्ड के पालक; यशः-घ्नः—यश को नष्ट करने वाला; निरपत्रपः—निर्लज्ज; सद्भिः—सदाचारी पुरुषों द्वारा; आचरितः—पालन किया गया; पन्थाः—पथ; येन—जिसके ( शिव ) द्वारा; स्तब्धेन—आचरणविहीन द्वारा; दूषितः—लाञ्छित।

शिव ने लोकपालकों के नाम तथा यश को धूल में मिला दिया है और सदाचार के पथ को दूषित किया है। निर्लज्ज होने के कारण उसे इसका पता नहीं है कि किस प्रकार से आचरण करना चाहिए।

तात्पर्य : दक्ष ने उस सभा में एकत्र सभी साधु पुरुषों को यह दिखाना चाहा कि देवता होकर भी

शिव ने किस प्रकार अपने अशिष्ट आचरण द्वारा देवताओं की कीर्ति को नष्ट कर दिया है। दक्ष द्वारा भगवान् शिव के विरोध में कहे गये वचनों को दूसरे प्रकार से अच्छे संदर्भ में भी समझा जा सकता है। उदाहरणार्थ, दक्ष ने कहा कि वे यशोघ्न हैं जिसका अर्थ होता है, “नाम तथा यश को नष्ट करने वाला” किन्तु इसका यह भी अर्थ लगाया जा सकता है कि वे इतने विख्यात थे कि उनके यश से अन्यो का यश नष्ट हो गया। दक्ष ने एक अन्य शब्द *निरपत्रप* का भी प्रयोग किया, जो दो अर्थों में प्रयुक्त हो सकता है। एक अर्थ है, “जो बौना है” तथा दूसरा अर्थ है “आश्रयहीनों का पालनहारा।” सामान्य रूप से शिव भूतनाथ अर्थात् निम्न कोटि के प्राणियों के स्वामी के नाम से विख्यात हैं। भूत का अर्थ है, “निम्नकोटि के प्राणी।” ये भगवान् शिव की शरण में जाते हैं क्योंकि वे सबों पर दया करने वाले और जल्दी प्रसन्न होने वाले हैं। इसीलिए वे *आशुतोष* कहलाते हैं। ऐसे मनुष्यों के लिए, जो अन्य देवों या विष्णु के पास नहीं पहुँच पाते, शिव शरण देने वाले हैं। अतः *निरपत्रप* शब्द इसी अर्थ में लिया जा सकता है।

एष मे शिष्यतां प्राप्तो यन्मे दुहितुरग्रहीत् ।

पाणिं विप्राग्निमुखतः सावित्र्या इव साधुवत् ॥ ११ ॥

#### शब्दार्थ

एष:—यह ( शिव ); मे—मेरी; शिष्यताम्—अधीनता; प्राप्तः—स्वीकार करके; यत्—क्योंकि; मे दुहितुः—मेरी पुत्री का; अग्रहीत्—ग्रहण किया; पाणिम्—हाथ; विप्र-अग्नि—ब्राह्मणों तथा अग्नि के; मुखतः—समक्ष; सावित्र्याः—गायत्री; इव—सदृश; साधुवत्—साधु ( ईमानदार ) पुरुष के समान।

इसने अग्नि तथा ब्राह्मणों के समक्ष मेरी पुत्री का पाणिग्रहण करके पहले ही मेरी अधीनता स्वीकार कर ली है। इसने गायत्री के समान मेरी पुत्री के साथ विवाह किया है और अपने को सत्यपुरुष बताया था।

तात्पर्य : दक्ष का यह कथन, कि शिव ने सत्पुरुष का ढोंग रचा, यह बताता है कि शिव ईमानदार न थे क्योंकि वे दक्ष के दामाद बनकर भी, उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित नहीं कर रहे थे।

गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कटलोचनः ।

प्रत्युत्थानाभिवादाहं वाचाप्यकृत नोचितम् ॥ १२ ॥

#### शब्दार्थ

गृहीत्वा—ग्रहण करके; मृग-शाव—मृग के बच्चे के तुल्य; अक्ष्याः—नेत्र वाली; पाणिम्—हाथ; मर्कट—बन्दर के;  
लोचनः—नेत्रों वाला; प्रत्युत्थान—अपने आसन से उठने का; अभिवाद—सम्मान, अभिवादन; अर्हे—मुझ जैसे पात्र को;  
वाचा—मृदु वाणी से; अपि—भी; अकृत न—नहीं किया; उचितम्—सम्मान।

इसके नेत्र बन्दर के समान हैं तो भी इसने मृगी जैसी नेत्रों वाली मेरी कन्या के साथ विवाह किया है। तो भी इसने उठकर न तो मेरा स्वागत किया और न मीठी वाणी से मेरा सत्कार करना उचित समझा।

लुप्तक्रियायाशुचये मानिने भिन्नसेतवे ।

अनिच्छन्नप्यदां बालां शूद्रायेवोशतीं गिरम् ॥ १३ ॥

#### शब्दार्थ

लुप्त-क्रियाय—शिष्टाचार का पालन न करते हुए; अशुचये—अपवित्र; मानिने—घमंडी; भिन्न-सेतवे—सभी मर्यादाओं को भंग करके; अनिच्छन्—न चाहते हुए; अपि—यद्यपि; अदाम्—प्रदान किया; बालाम्—अपनी पुत्री; शूद्राय—शूद्र को; इव—सदृश; उशतीम् गिरम्—वेदों का सन्देश।

शिष्टाचार के सभी नियमों को भंग करने वाले इस व्यक्ति को अपनी कन्या प्रदान करने की मेरी तनिक भी इच्छा नहीं थी। वांछित विधि-विधानों का पालन न करने के कारण यह अपवित्र है, किन्तु इसे अपनी कन्या प्रदान करने के लिए मैं उसी प्रकार बाध्य हो गया जिस प्रकार किसी शूद्र को वेदों का पाठ पढ़ाना पड़े।

तात्पर्य : शूद्र को वेद पढ़ाना वर्जित है क्योंकि यह अपनी मलिन आदतों के कारण ऐसे उपदेश सुनने का पात्र नहीं है। जब तक कोई ब्राह्मण-गुणों से सम्पन्न न हो ले, तब तक वह वेद नहीं पढ़ सकता, ऐसा प्रतिबन्ध वैसा ही है जैसाकि विधि के विद्यार्थी को विधि-विद्यालय में तब तक प्रवेश नहीं करने दिया जाता जब तक उसने नीचे की कक्षाएँ उत्तीर्ण न कर ली हों। दक्ष की दृष्टि में शिव अपवित्र आचरणों वाले थे और उसकी पुत्री का पाणिग्रहण करने के योग्य न थे, क्योंकि उसकी पुत्री सती अत्यन्त ज्ञानवान, सुन्दर तथा साध्वी थी। इस प्रसंग में *भिन्न सेतवे* शब्द व्यवहृत हुआ है, जिसका अर्थ होता है ऐसा पुरुष जिसने वैदिक नियमों का पालन न करते हुए सभी प्रकार के विधानों को भंग कर दिया हो। दूसरे शब्दों में, दक्ष के अनुसार शिव के साथ उसकी पुत्री का वैवाहिक कर्म सर्वथा अनुचित था।

प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः

अटत्युन्मत्तवन्नग्नो व्युप्तकेशो हसन्नुदन् ।

चिताभस्मकृतस्नानः प्रेतस्त्रङ्गस्थिभूषणः ॥ १४ ॥

शिवापदेशो ह्यशिवो मत्तो मत्तजनप्रियः ।

पतिः प्रमथनाथानां तमोमात्रात्मकात्मनाम् ॥ १५ ॥

### शब्दार्थ

प्रेत-आवासेषु—श्मशान में; घोरेषु—भयंकर; प्रेतैः—प्रेतों द्वारा; भूत-गणैः—भूतों द्वारा; वृतः—घिरा हुआ, संग में; अटति—घूमता है; उन्मत्त-वत्—पागल के समान; नग्नः—नंगा; व्युप्त-केशः—बिखरे बालों वाला; हसन्—हँसता हुआ; रुदन्—चिल्लाता है; चिता—चिता की; भस्म—राख से; कृत-स्नानः—नहाकर ( लगाकर ); प्रेत—शवों के मुँडों की; स्त्रक्—माला; नृ-अस्थि-भूषणः—मृत पुरुषों की अस्थियों को आभूषण बनाये हुए; शिव-अपदेशः—जो नाम का शिव ( शुभ ) है; हि—क्योंकि; अशिवः—अमंगल; मत्तः—विक्षिप्त; मत्त-जन-प्रियः—विक्षिप्तों को प्रिय लगने वाला; पतिः—नायक, स्वामी; प्रमथ-नाथानाम्—प्रमथों के स्वामियों का; तमः—मात्र-आत्मक-आत्मनाम्—तमोगुणी इन सबों का।

वह श्मशान जैसे गंदे स्थानों में रहता है और उसके साथ भूत तथा प्रेत रहते हैं। वह पागलों के समान नंगा रहता है, कभी हँसता है, तो कभी चिल्लाता है और सारे शरीर में श्मशान की राख लपेटे रहता है। वह ठीक से नहाता भी नहीं। वह खोपड़ियों तथा अस्थियों की माला से अपने शरीर को विभूषित करता है। अतः वह केवल नाम से ही शिव है, अन्यथा वह अत्यन्त प्रमत्त तथा अशुभ प्राणी है। वह केवल तामसी प्रमत्त लोगों का प्रिय है और उन्हीं का अगुवा है।

तात्पर्य : जो नियमित रूप से नहाते नहीं उनकी संगति प्रेतों तथा पागल लोगों से मानी जाती है। शिवजी ऐसे ही लगते थे, किन्तु उनका शिव नाम अत्यन्त उपयुक्त है, क्योंकि वे ऐसे व्यक्तियों पर अत्यन्त दयालु रहते हैं, जो तमोगुम के घोर अंधकार में पड़े हुए हैं—यथा अस्वच्छ शराबी लोग जो नियमित रूप से स्नान भी नहीं करते। भगवान् शिव इतने कृपालु हैं कि वे ऐसे प्राणियों को शरण प्रदान करते हैं और उन्हें क्रमशः आत्मिक चेतना तक ऊपर ले जाते हैं। यद्यपि ऐसे लोगों को आत्मिक ज्ञान के धरातल तक उठा पाना कठिन है, किन्तु भगवान् शिव इसका उत्तरदायित्व स्वयं लेते हैं इसीलिए, जैसाकि वेदों में कहा गया है, शिवजी सर्व-मंगलकारी हैं। इस तरह उनकी संगति से ऐसी पतित आत्माएँ भी ऊपर उठ सकती हैं। कभी-कभी यह देखा गया है कि महापुरुष की भेंट पतित आत्माओं के हितार्थ होती है, न कि उनके निजी हित के लिए। भगवान् की इस सृष्टि में अनेक प्रकार के जीव हैं। इनमें से कुछ सतोगुण-संपन्न हैं, तो कुछ रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त होते हैं। भगवान् विष्णु ऐसे लोगों का भार अपने ऊपर लेते हैं, जो कृष्णभावनाभावित उन्नत वैष्णव हैं। भगवान् ब्रह्मा सकाम कर्म



में अनुरक्त लोगों का भार ग्रहण करते हैं, किन्तु शिवजी इतने दयालु हैं कि वे उन सभी लोगों का भार लेते हैं, जो तमोगुणी हैं और जिनके आचरण पशुओं से भी गिरे हुए हैं। इसीलिए शिव को विशेष रूप से मंगलकारी कहा गया है।

तस्मा उन्मादनाथाय नष्टशौचाय दुर्हृदे ।

दत्ता बत मया साध्वी चोदिते परमेष्ठिना ॥ १६ ॥

#### शब्दार्थ

तस्मै—उस; उन्माद-नाथाय—प्रेतों के स्वामी को; नष्ट-शौचाय—समस्त स्वच्छता से रहित व्यक्ति को; दुर्हृदे—विकारों से पूर्ण हृदय; दत्ता—प्रदान की गयी थी; बत—अहो; मया—मेरे द्वारा; साध्वी—सती; चोदिते—विनती किये जाने पर; परमेष्ठिना—परम गुरु ( ब्रह्मा ) द्वारा।

ब्रह्माजी के अनुरोध पर मैंने अपनी साध्वी पुत्री उसे प्रदान की थी, यद्यपि वह समस्त प्रकार की स्वच्छता से रहित है और उसका हृदय विकारों से पूरित है।

तात्पर्य : माता पिता का धर्म है कि वे अपनी पुत्री को ऐसे परिवार में ब्याहें जो स्वच्छता, सदाचरण, सम्पत्ति, सामाजिक स्थिति इत्यादि में उनकी वंश-परम्परा के अनुकूल हो। दक्ष को पछतावा था कि उसने अपने पिता ब्रह्मा के कहने पर अपनी पुत्री ऐसे व्यक्ति को प्रदान की थी, जो उसकी गणना के अनुसार घिनौना था। वह इतना क्रुद्ध था कि वह इतना तक स्वीकार नहीं कर रहा था कि उसके पिता की ओर से ही विवाह के लिए अनुरोध किया गया था। उल्टे उसने ब्रह्मा को परमेष्ठी अर्थात् जगद्गुरु कहा, क्योंकि क्रोध के मारे वह ब्रह्मा को अपना पिता नहीं स्वीकार कर रहा था। दूसरे शब्दों में, उसने ब्रह्मा पर अल्पज्ञानी होने का आरोप लगाया, क्योंकि उन्होंने उसकी सुन्दर कन्या को एक अयोग्य व्यक्ति को प्रदान करने की सलाह दी थी। क्रोध में मनुष्य सब कुछ भूल जाता है, अतः दक्ष ने क्रोधवश न केवल शिव पर दोषारोपण किया, वरन् अपने पिता ब्रह्माजी की भी आलोचना की, क्योंकि उन्हीं के अविवेक पूर्ण उपदेश पर ही उसने शिवजी को अपनी कन्या ब्याही थी।

मैत्रेय उवाच

विनिन्दैवं स गिरिशमप्रतीपमवस्थितम् ।

दक्षोऽथाप उपस्पृश्य क्रुद्धः शप्तुं प्रचक्रमे ॥ १७ ॥

#### शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; विनिन्द्य—गाली देकर; एवम्—इस प्रकार; सः—वह ( दक्ष ); गिरिशम्—शिव; अप्रतीपम्—शत्रुतारहित; अवस्थितम्—स्थित रहकर; दक्षः—दक्ष; अथ—अब; अपः—जल; उपस्पृश्य—हाथ तथा मुँह धोकर; क्रुद्धः—क्रुद्ध, नाराज; शप्तुम्—शाप देना; प्रचक्रमे—प्रारम्भ किया।

मैत्रेय मुनि ने आगे कहा : इस प्रकार शिव को अपने विपक्ष में स्थित देखकर दक्ष ने जल से आचमन किया और निम्नलिखित शब्दों से शाप देना प्रारम्भ किया।

अयं तु देवयजन इन्द्रोपेन्द्रादिभिर्भवः ।

सह भागं न लभतां देवैर्देवगणाधमः ॥ १८ ॥

#### शब्दार्थ

अयम्—यह; तु—लेकिन; देव-यजने—देवताओं के यज्ञ में; इन्द्र-उपेन्द्र-आदिभिः—इन्द्र, उपेन्द्र तथा अन्यो सहित; भवः—शिव; सह—के साथ; भागम्—एक अंश; न—नहीं; लभताम्—प्राप्त करना चाहिए; देवैः—देवताओं से; देव-गण-अधमः—समस्त देवताओं में सबसे निम्न।

देवता तो यज्ञ की आहुति में भागीदार हो सकते हैं, किन्तु समस्त देवों में अधम शिव को यज्ञ-भाग नहीं मिलना चाहिए।

तात्पर्य : इस शाप के कारण शिव वैदिक यज्ञों की आहुति में भाग लेने से वंचित ही रहे। इस प्रसंग में श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका है कि दक्ष के इसी शाप से भगवान् शिव अन्य भौतिकतावादी देवताओं का साथ देने की बला से बचे रहे। शिवजी श्रीभगवान् के सबसे बड़े भक्त हैं और उन्हें यह शोभा नहीं देता कि वे देवताओं के समान भौतिकतावादी लोगों के साथ उठें-बैठें। इस प्रकार दक्ष का शाप एक प्रकार से वरदान सिद्ध हुआ क्योंकि इस के कारण शिव को अन्य देवताओं के साथ जो अत्यन्त भौतिकतावादी थे, खाना अथवा उठना बैठना नहीं पड़ेगा। हमारे समक्ष गौरकिशोर दास बाबाजी महाराज ने व्यावहारिक दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। वे शौचालय के पास बैठकर हरे कृष्ण का जाप करते थे। चूँकि अनेक लोग आकर उनके हरे कृष्ण जप में बाधा डालते थे, इसलिए उनकी संगति से बचने के लिए ही वे शौचालय के पास बैठे रहते, क्योंकि तब भौतिकतावादी लोग गंदगी तथा दुर्गंध के कारण निकट जाना पसन्द नहीं करेंगे। किन्तु वे इतने महान् पुरुष थे कि ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज के गुरु बने। निष्कर्ष यह निकला कि शिव जानबूझकर ऐसा आचरण करते थे जिससे भौतिकतावादी लोग उनकी भक्ति में बाधक न बनें।

निषिध्यमानः स सदस्यमुख्यै-

दर्क्षो गिरित्राय विसृज्य शापम् ।

तस्माद्विनिष्क्रम्य विवृद्धमन्यु-

र्जगाम कौरव्य निजं निकेतनम् ॥ १९ ॥

#### शब्दार्थ

निषिध्यमानः—मना किये जाने पर; सः—वह ( दक्ष ); सदस्य-मुख्यैः—यज्ञ के सदस्यों द्वारा; दक्षः—दक्ष; गिरित्राय—शिव को; विसृज्य—त्याग कर; शापम्—शाप; तस्मात्—उस स्थान से; विनिष्क्रम्य—बाहर जाकर; विवृद्ध-मन्युः—अत्यन्त क्रुद्ध होकर; जगाम—चला गया; कौरव्य—हे विदुर; निजम्—अपने; निकेतनम्—घर।

मैत्रेय ने आगे कहा : हे विदुर, उस यज्ञ के सभासदों द्वारा मना किये जाने पर भी दक्ष क्रोध में आकर शिवजी को शाप देता रहा और फिर सभा त्याग कर अपने घर चला गया।

तात्पर्य : क्रोध इतना बुरा होता है कि दक्ष जैसा महापुरुष भी क्रोध के कारण यज्ञस्थल को जिसकी अध्यक्षता ब्रह्माजी कर रहे थे और जहाँ समस्त ऋषि तथा पवित्र एवं साधु पुरुष एकत्र थे, छोड़कर चला गया। उन सबों ने उससे न जाने के लिए अनुरोध किया, किन्तु वह क्रुद्ध होकर यह सोचते हुए चला गया कि यह शुभस्थल मेरे योग्य नहीं है। अपने उच्च पद के कारण गर्वित होकर उसने सोचा कि उसके अनुसार कोई भी उससे बड़ा नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मा समेत सभी सभासदों ने उससे क्रोध न करने तथा सभा को न छोड़ने का अनुरोध किया, किन्तु तो भी वह चला गया। निष्ठुर क्रोध का यही परिणाम होता है। इसीलिए *भगवद्गीता* में उपदेश दिया गया है कि जो मनुष्य आध्यात्मिक चेतना में टोस उन्नति करना चाहता है, उसे लोभ, क्रोध तथा काम इन तीन से बचना चाहिए। वास्तव में हम समझ सकते हैं कि ये तीनों मनुष्य को पागल बना देते हैं, भले ही वह दक्ष जैसा महापुरुष ही क्यों न हो। दक्ष का नाम ही यह बताता है कि वह समस्त भौतिक कार्यकलापों में पटु (दक्ष) था, किन्तु शिव जैसे परम साधु पुरुष के प्रति घृणा के कारण वह काम, क्रोध तथा लोभ इन तीनों शत्रुओं का शिकार बन गया। इसीलिए भगवान् चैतन्य ने उपदेश दिया है कि कोई वैष्णव का अपमान कभी न करे। उन्होंने वैष्णव के प्रति किये गये अपराधों की तुलना प्रमत्त हाथी से की। जिस प्रकार प्रमत्त हाथी कुछ भी कर सकता है, उसी तरह जब कोई व्यक्ति किसी वैष्णव का अपमान कर सकता है, तो वह कोई घृणित से घृणित कार्य भी कर सकता है।

विज्ञाय शापं गिरिशानुगाग्रणी-

नन्दीश्वरो रोषकषायदूषितः ।  
 दक्षाय शापं विससर्ज दारुणं  
 ये चान्वमोदंस्तदवाच्यतां द्विजाः ॥ २० ॥

#### शब्दार्थ

विज्ञाय—जानकर; शापम्—शाप; गिरिश—शिव का; अनुग-अग्रणी:—प्रमुख पार्षदों में से एक; नन्दीश्वरः—नन्दीश्वर; रोष—क्रोध; कषाय—लाल; दूषितः—अंध; दक्षाय—दक्ष को; शापम्—शाप; विससर्ज—दिया; दारुणम्—कठोर; ये—जिन्होंने; च—तथा; अन्वमोदन्—सहन किया; तत्-अवाच्यताम्—शिव को शाप देना; द्विजाः—ब्राह्मणजन ।

यह जानकर कि भगवान् शिव को शाप दिया गया है, शिव का प्रमुख पार्षद नन्दीश्वर अत्यधिक क्रुद्ध हुआ। उसकी आँखें लाल हो गईं और उसने दक्ष तथा वहाँ उपस्थित सभी ब्राह्मणों को, जिन्होंने दक्ष द्वारा कटु वचनों में शिवजी को शापित किए जाने को सहन किया था, शाप देने की तैयारी की।

तात्पर्य : कुछ नवदीक्षित वैष्णवों तथा शैवों में दीर्घकालीन मतभेद चला आ रहा है; वे सदैव भिड़ते रहते हैं। जब दक्ष ने कटु वचनों द्वारा शिव को शाप दिया तो वहाँ उपस्थित कुछ ब्राह्मणों को मजा आया होगा क्योंकि कुछ ब्राह्मण शिव को अधिक पसंद नहीं करते हैं। वे शिव की स्थिति को न समझने के कारण ऐसा करते हैं। इस शाप से नन्दीश्वर प्रभावित हुआ, किन्तु उसने वहाँ पर उपस्थित भगवान् शिव का अनुकरण नहीं किया। यदि शिवजी चाहते तो वे भी दक्ष को उसी प्रकार शाप दे सकते थे, किन्तु वे शान्त बने रहे। किन्तु उनका अनुयायी नन्दीश्वर इसे सहन नहीं कर सका। निस्सन्देह, अनुयायी होने के कारण यह उचित ही था कि वह अपने स्वामी की निन्दा सहन न करता, किन्तु उसे वहाँ उपस्थित ब्राह्मणों को शाप नहीं देना चाहिए था। इससे सारा मामला ऐसा उलझ गया कि जो अधिक बलशाली न थे वे अपने पदों को भूल गये और इस तरह उस सभा में शाप-प्रतिशाप चलता रहा। कहने का तात्पर्य यह है कि भौतिक जगत ऐसा अस्थिर है कि वहाँ उपस्थित नन्दीश्वर, दक्ष तथा अनेक ब्राह्मण रोष के वातावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे।

य एतन्मर्त्यमुद्दिश्य भगवत्यप्रतिद्रुहि ।  
 द्रुह्यत्यज्ञः पृथग्दृष्टिस्तत्त्वतो विमुखो भवेत् ॥ २१ ॥

#### शब्दार्थ

यः—जो ( दक्ष ); एतत् मर्त्यम्—इस नश्वर शरीर के; उद्दिश्य—प्रसंग में; भगवति—शिव को; अप्रतिबुद्धि—जो ईर्ष्यालु नहीं हैं; द्रुहति—द्वेष करता है; अज्ञः—कम बुद्धिमान व्यक्ति; पृथक्-दृष्टिः—द्वैत भाव; तत्त्वतः—दिव्य ज्ञान से; विमुखः—रहित; भवेत्—हो जाए।

जिस किसी ने दक्ष को सर्वश्रेष्ठ पुरुष मान कर ईर्ष्यावश भगवान् शिव का निरादर किया है, वह अल्प बुद्धिवाला है और अपने द्वैतभाव के कारण वह दिव्यज्ञान से विहीन हो जाएगा।

तात्पर्य : नन्दीश्वर का प्रथम शाप था कि जो भी दक्ष का समर्थन कर रहा है, वह अज्ञानवश अपने शरीर को ही सब कुछ समझ रहा है और चूँकि दक्ष को दिव्य ज्ञान नहीं था, अतः उसका समर्थन करने से वह भी दिव्य ज्ञान से विहीन हो जाएगा। नन्दीश्वर ने कहा कि दक्ष अन्य भौतिकतावादी व्यक्तियों की तरह अपने शरीर को ही सब कुछ मान बैठा है और सभी शारीरिक सुख-सुविधाएँ प्राप्त करना चाह रहा है। उसे अपने शरीर, अपनी पत्नी, सन्तान, घर तथा अन्य ऐसी वस्तुओं में, जो आत्मा से भिन्न हैं, अत्यधिक आसक्ति है। अतः नन्दीश्वर का शाप था कि जो भी दक्ष का समर्थक होगा वह दिव्य आत्मज्ञान से विहीन हो जाएगा और इस तरह वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के ज्ञान से भी विमुख होगा।

गृहेषु कूटधर्मेषु सक्तो ग्राम्यसुखेच्छया ।

कर्मतन्त्रं वितनुते वेदवादविपन्नधीः ॥ २२ ॥

#### शब्दार्थ

गृहेषु—गृहस्थ जीवन में; कूट-धर्मेषु—कपट धार्मिकता में; सक्तः—आसक्त होने से; ग्राम्य-सुख-इच्छया—भौतिक सुख की कामना से; कर्म-तन्त्रम्—सकाम कर्म; वितनुते—करता है; वेद-वाद—वेद की व्याख्या से; विपन्न-धीः—नष्टबुद्धि।

जिस कपटपूर्ण धार्मिक गृहस्थ-जीवन में कोई मनुष्य भौतिक सुख के प्रति आसक्त रहता है और साथ ही वेदों की व्यर्थ व्याख्या के प्रति आकृष्ट होता है, इसमें उसकी सारी बुद्धि हर ली जाती है और वह पूर्ण रूप से सकाम कर्म में लिप्त हो जाता है।

तात्पर्य : जो लोग अपने शारीरिक अस्तित्व को ही सब कुछ मानते हैं, वे वेदवर्णित सकाम कर्म में आसक्त रहते हैं। उदाहरणार्थ, वेदों में उल्लेख है कि जो चातुर्मास्य व्रत का पालन करता है, उसे स्वर्गलोक में शाश्वत सुख उपलब्ध होगा। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि वेदों की यह अलंकृत भाषा अधिकतर उन पुरुषों को आकृष्ट करती है, जो अपने को शरीर-रूप मानते हैं। ऐसे लोगों के लिए स्वर्गिक सुख ही सब सुख है; उन्हें यह पता नहीं है कि इससे भी परे आत्म-जगत या ईश्वरीय धाम है और वहाँ जाया जा सकता है। इस प्रकार वे दिव्य ज्ञान से वंचित रह जाते हैं। ऐसे लोग गृहस्थ-जीवन

के विधि-विधानों को सम्पन्न करने में अत्यन्त सतर्क रहते हैं जिससे अगले जीवन में वे चन्द्र लोक या अन्य स्वर्ग लोकों में जा सकें। यहाँ पर बताया गया है कि ऐसे लोग ग्राम्य सुख अर्थात् 'भौतिक सुख' में लिप्त रहते हैं। उन्हें शाश्वत, आनन्दमय आध्यात्मिक जीवन का कोई पता नहीं रहता।

बुद्ध्या पराभिध्यायिन्या विस्मृतात्मगतिः पशुः ।

स्त्रीकामः सोऽस्त्वतितरां दक्षो बस्तमुखोऽचिरात् ॥ २३ ॥

**शब्दार्थ**

बुद्ध्या—बुद्धि से; पर-अभिध्यायिन्या—शरीर को आत्म समझ कर; विस्मृत-आत्म-गतिः—विष्णु ज्ञान को भूलकर; पशुः—पशु; स्त्री-कामः—विषयी जीवन में लिप्त रहकर; सः—वह; अस्तु—हो; अतितराम्—अतिशय; दक्षः—दक्ष; बस्त-मुखः—बकरे का मुँह; अचिरात्—शीघ्र ही।

दक्ष ने देह को ही सब कुछ समझ रखा है। इसने विष्णुपाद अथवा विष्णु-गति को भुला दिया है और केवल स्त्री-संभोग में ही लिप्त रहता है, अतः इसे शीघ्र ही बकरे का मुख प्राप्त होगा।

विद्याबुद्धिरविद्यायां कर्ममय्यामसौ जडः ।

संसरन्त्वह ये चामुमनु शर्वावमानिनम् ॥ २४ ॥

**शब्दार्थ**

विद्या-बुद्धिः—भौतिक शिक्षा तथा बुद्धि; अविद्यायाम्—अज्ञान में; कर्म-मय्याम्—सकाम कर्म से उत्पन्न; असौ—यह ( दक्ष ); जडः—मन्द; संसरन्तु—बारम्बार जन्म धारण करे; इह—इस जगत में; ये—जो; च—तथा; अमुम्—दक्ष का; अनु—अनुसरण करने वाले; शर्व—शिव; अवमानिनम्—अनादर करने से।

जो लोग भौतिक विद्या तथा युक्ति के अनुशीलन से पदार्थ की भाँति जड़ बन चुके हैं, वे अज्ञानवश सकाम कर्मों में लगे हुए हैं। ऐसे मनुष्यों ने जानबूझकर भगवान् शिव का अनादर किया है। ऐसे लोग जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहें।

**तात्पर्य :** यहाँ पर वर्णित तीनों शाप किसी को भी पत्थर के समान जड़ बनाने, आत्मज्ञान से रहित करने तथा भौतिक विद्या में संलग्न रहने के लिए पर्याप्त हैं। इन शापों के देने के बाद नन्दीश्वर ने ब्राह्मणों को शाप दिया कि वे जन्म-मरण के चक्र में बने रहें, क्योंकि उन्होंने शिवजी का अनादर करने में दक्ष का साथ दिया है।

गिरः श्रुतायाः पुष्पिण्या मधुगन्धेन भूरिणा ।  
मथ्ना चोन्मथितात्मानः सम्मुह्यन्तु हरद्विषः ॥ २५ ॥

**शब्दार्थ**

गिरः—शब्द; श्रुतायाः—वेदों के; पुष्पिण्याः—पुष्पों से युक्त; मधु-गन्धेन—शहद की गन्ध से; भूरिणा—अत्यधिक; मथ्ना—मोहने वाली; च—तथा; उन्मथित-आत्मानः—जिनके मन जड़ बन चुके हैं; सम्मुह्यन्तु—वे आसक्त रहें; हर-द्विषः—शिव से ईर्ष्या करने वाले, शिवद्रोही ।

मोहक वैदिक प्रतिज्ञाओं की पुष्पमयी ( अलंकृत ) भाषा से आकृष्ट होकर जो जड़ बन चुके हैं और शिव-द्रोही हैं, वे सदैव सकाम कर्मों में निरत रहें ।

तात्पर्य : उच्चस्तरीय भौतिकतावादी जीवन के लिए उच्चतर लोकों में पहुँचने की वैदिक प्रतिज्ञा की तुलना से पुष्पमयी अलंकृत भाषा से की गई है क्योंकि पुष्प में निश्चित रूप से सुगंधि होती है, किन्तु वह अधिक काल तक नहीं चलती। इसी प्रकार पुष्प में मधु होता है किन्तु वह भी शाश्वत नहीं होता ।

सर्वभक्षा द्विजा वृत्त्यै धृतविद्यातपोव्रताः ।  
वित्तदेहेन्द्रियारामा याचका विचरन्त्वह ॥ २६ ॥

**शब्दार्थ**

सर्व-भक्षाः—सब कुछ खाने वाले; द्विजाः—ब्राह्मण लोग; वृत्त्यै—शरीर पालने के लिए; धृत-विद्या—शिक्षा का कार्य ग्रहण करके; तपः—तपस्या; व्रताः—तथा व्रत; वित्त—धन; देह—शरीर; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; आरामाः—तुष्टि; याचकाः—भिक्षुकों के समान; विचरन्तु—इधर-उधर घूमें; इह—यहाँ ।

ये ब्राह्मण केवल अपने शरीर-पालन के लिए विद्या, तप तथा व्रतादि का आश्रय लें। इन्हें भक्ष्याभक्ष्य का विवेक न रह जाए। ये द्वार-द्वार भिक्षा माँगकर अपने शरीर की तुष्टि के लिए धन की प्राप्ति करें।

तात्पर्य : नन्दीश्वर ने दक्ष को समर्थन देनेवाले ब्राह्मणों को जो तीसरा शाप दिया वह पूरी तरह कलियुग में लागू होता है। तथाकथित ब्राह्मण अब परब्रह्म के स्वरूप को समझने में कोई रुचि नहीं दिखाते, यद्यपि ब्राह्मण का अर्थ है, वह जिसने ब्रह्म विषयक ज्ञान प्राप्त कर लिया है। वेदान्त सूत्र में भी कहा गया है अथातो ब्रह्मजिज्ञासाः यह मनुष्य जीवन परब्रह्म की अनुभूति के लिए है, अर्थात् मनुष्य जीवन का उद्देश्य ब्राह्मण-पद तक ऊपर उठना है। दुर्भाग्यवश आधुनिक ब्राह्मण अथवा तथाकथित ब्राह्मण परिवारों में उत्पन्न ब्राह्मण अपने-अपने व्यावसायिक कर्म ( धर्म ) त्याग चुके हैं, किन्तु फिर भी

वे अन्य किसी को अपना स्थान ग्रहण करने नहीं देना चाहते। शास्त्रों, श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता तथा अन्य वैदिक साहित्य में ब्राह्मणों के गुण बताये गये हैं। ब्राह्मण कोई आनुवंशिक पदवी या पद नहीं है। यदि कोई अब्राह्मण (उदाहरणार्थ, शूद्र कुल में उत्पन्न) प्रामाणिक गुरु द्वारा उचित शिक्षा पाकर योग्य बन कर ब्राह्मण बनना चाहता है, तो ये तथाकथित ब्राह्मण विरोध करते हैं। नन्दीश्वर द्वारा शापित ऐसे ब्राह्मण ऐसी स्थिति में हैं कि उन्हें भक्ष्याभक्ष्य का कोई विवेक नहीं रह गया है और वे इस मर्त्य देह तथा अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए ही जीवित रहते हैं। ऐसे पतित बद्धजीव ब्राह्मण कहलाने के योग्य नहीं हैं, किन्तु कलियुग में वे अपने को ब्राह्मण होने का दावा करते हैं और यदि कोई मनुष्य वास्तव में ब्राह्मणत्व प्राप्त करने का प्रयास करता है, तो वे उसके मार्ग में बाधक बनते हैं। आधुनिक युग में ऐसी ही स्थिति आ गई है। चैतन्य महाप्रभु ने इस सिद्धान्त की घोर निन्दा की है। रामानन्द राय से वार्तालाप के दौरान उन्होंने कहा है कि मनुष्य चाहे ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ हो या शूद्र कुल में, चाहे वह गृहस्थ हो या संन्यासी, यदि वह कृष्ण-विज्ञान जानता है, तो वह गुरु बन सकता है। चैतन्य महाप्रभु के कई शूद्र शिष्य थे, यथा हरिदास ठाकुर तथा रामानन्द राय। यहाँ तक कि सभी गोस्वामी, जो चैतन्य महाप्रभु के प्रमुख छात्र थे, ब्राह्मण समाज से च्युत थे, किन्तु उन्होंने कृपा करके उन्हें उच्चकोटि का वैष्णव बना दिया।

तस्यैवं वदतः शापं श्रुत्वा द्विजकुलाय वै ।

भृगुः प्रत्यसृजच्छापं ब्रह्मदण्डं दुरत्ययम् ॥ २७ ॥

#### शब्दार्थ

तस्य—उसका ( नन्दीश्वर का ); एवम्—इस प्रकार; वदतः—शब्द; शापम्—शाप; श्रुत्वा—सुनकर; द्विज-कुलाय—ब्राह्मणों को; वै—निस्सन्देह; भृगुः—भृगु ने; प्रत्यसृजत्—दिया; शापम्—शाप; ब्रह्म-दण्डम्—ब्राह्मण द्वारा दिया गया दण्ड; दुरत्ययम्—दुर्लभ, दुस्तर।

इस प्रकार जब नन्दीश्वर ने समस्त कुलीन ब्राह्मणों को शाप दे दिया तो प्रतिक्रियास्वरूप भृगुमुनि ने शिव के अनुयायियों की भर्त्सना की और उन्हें घोर ब्रह्म-शाप दे दिया।

तात्पर्य : दुरत्यया शब्द का व्यवहार ब्रह्मदण्ड अर्थात् ब्राह्मण द्वारा दिये जाने वाले शाप के प्रसंग में हुआ है। ब्राह्मण द्वारा दिया गया शाप अत्यन्त घोर (प्रबल) होता है, इसीलिए उसे दुरत्यया अर्थात् दुष्कर कहा गया है। जैसाकि भगवान् ने भगवद्गीता में कहा है कि प्रकृति के कठोर नियम दुर्लभ हैं,



इसी प्रकार यदि कोई ब्राह्मण शाप देता है, तो वह भी दुर्लभ्य है। किन्तु *भगवद्गीता* में यह भी कहा गया है कि भौतिक लोक के शाप या वरदान अन्ततः भौतिक सृष्टियाँ ही हैं। *चैतन्य चरितामृत* से इसकी पुष्टि होती है कि जिसे भौतिक जगत में वरदान या शाप माना जाता है वे दोनों वस्तुतः एक ही धरातल पर हैं, क्योंकि वे भौतिक हैं। अतः इस भौतिक कल्मष से छुटकारा पाने के लिए भगवान् की शरण ग्रहण करनी चाहिए जैसाकि *भगवद्गीता* (७.१४) में कहा गया है— *मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते*। सर्वश्रेष्ठ मार्ग यही है कि शाप तथा वरदान से ऊपर उठा जाये और भगवान् कृष्ण की शरण ग्रहण की जाये तथा दिव्य स्थिति में रहा जाये। जिन लोगों ने श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण कर ली है वे सदैव शान्तिपूर्वक रहते हैं। न तो उन्हें कोई शाप देता है और न वे किसी को शाप देते हैं। यही दिव्य स्थिति है।

भवव्रतधरा ये च ये च तान्समनुव्रताः ।

पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥ २८ ॥

#### शब्दार्थ

भव-व्रत-धरा:—शिव के अनुयायी; ये—जो; च—तथा; ये—जो; च—तथा; तान्—ऐसे नियम; समनुव्रताः—पालन करते हुए; पाषण्डिनः—नास्तिक; ते—वे; भवन्तु—हैं; सत्-शास्त्र-परिपन्थिनः—दिव्य शास्त्रीय आदेशों से विपथ।

जो शिव को प्रसन्न करने का व्रत धारण करता है अथवा जो ऐसे नियमों का पालन करता है, वह निश्चित रूप से नास्तिक होगा और दिव्य शास्त्रों के विरुद्ध आचरण करने वाला बनेगा।

तात्पर्य : कभी-कभी यह देखा जाता है कि शिवजी के भक्त शिव के आचरणों का अनुकरण करते हैं। उदाहरणार्थ, शिवजी ने विषपान किया था, अतः उनके कुछ भक्त उनके अनुकरण पर *गाँजा* जैसे मादक पदार्थ का सेवन करते हैं। इसीलिए यहाँ यह शाप दिया गया है कि जो ऐसा करता है, वह पतित बने और वैदिक नियमों के विरुद्ध आचरण करने वाला हो। यह कहा गया है कि शिवजी के ऐसे भक्त *सच्छास्त्र-परिपन्थिनः* अर्थात् “शास्त्रों के निष्कर्षों के विरुद्ध चलने वाले” होंगे। इसकी पुष्टि *पद्म पुराण* में भी हुई है। श्रीभगवान् द्वारा शिव को आदेश दिया गया कि वे विशेष उद्देश्य से निर्विशेष वाद अथवा मायावाद दर्शन का उपदेश दें, जिस प्रकार भगवान् बुद्ध ने शास्त्रों में उल्लिखित ऐसे ही विशिष्ट उद्देश्य से शून्यवाद-दर्शन का उपदेश दिया था।

कभी-कभी वेदविरुद्ध दार्शनिक सिद्धान्त का उपदेश आवश्यक हो जाता है। *शिवपुराण* में उल्लेख है कि शिवजी ने पार्वती से कहा कि वे कलियुग में ब्राह्मण शरीर में मायावाद दर्शन का उपदेश देंगे। इस प्रकार सामान्य रूप से यह पाया जाता कि शिवजी के उपासक मायावादी होते हैं। भगवान् शिव ने स्वयं कहा है—*मायावादम् असच्छास्त्रम्*। जैसाकि बताया जा चुका है *असत्-शास्त्र* का अर्थ मायावाद निर्विशेष का सिद्धान्त है। भृगु मुनि ने शाप दिया कि शिव के आराधक इस मायावाद *असत् शास्त्र* के अनुयायी हों, जो यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि भगवान् निर्गुण हैं। इसके साथ ही साथ शिव के उपासकों का एक सम्प्रदाय राक्षसी जीवन व्यतीत करता है। *श्रीमद्भागवत* तथा *नारद पञ्चरात्र* प्रामाणिक शास्त्र हैं, जो *सत्-शास्त्र* की कोटि में आते हैं जिनसे ईश्वर-साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त होता है। *असत्-शास्त्र* इससे सर्वथा विपरीत हैं।

नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थधारिणः ।

विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम् ॥ २९ ॥

#### शब्दार्थ

नष्ट-शौचाः—शुचिता ( पवित्रता ) का परित्याग करके; मूढ-धियः—मूर्ख; जटा-भस्म-अस्थि-धारिणः—जटा, राख तथा हड्डियाँ धारण किये; विशन्तु—प्रवेश करें; शिव-दीक्षायाम्—शिव पूजा की दीक्षा में; यत्र—जहाँ; दैवम्—ईश्वरी हैं; सुर-आसवम्—मदिरा तथा आसव।

जो शिव की पूजा का व्रत लेते हैं, वे इतने मूर्ख होते हैं कि वे उनका अनुकरण करके अपने शरीर पर लम्बी जटाएँ धारण करते हैं और शिव की उपासना की दीक्षा ले लेने के बाद वे मदिरा, मांस तथा अन्य ऐसी ही वस्तुएँ खाना-पीना पसंद करते हैं।

तात्पर्य : अनियमित जीवन बिताने वाले मूर्ख प्राणी मदिरा तथा मांस का सेवन करते हैं, लम्बी-लम्बी जटाएँ रखते हैं, नित्य स्नान नहीं करते और गाँजा पीते हैं। ऐसे आचरण से मनुष्य दिव्य ज्ञान से विहीन हो जाता है। शिवमंत्र की दीक्षा-ग्रहण में *मुद्रिकाष्टक* होता है, जिसमें कभी-कभी यह संस्तुति की जाती है कि मनुष्य स्त्री योनि पर अपना आसन लगाए तभी उसे *निर्वाण* प्राप्त हो सकता है। ऐसी उपासना में मदिरा अथवा ताड़ी की आवश्यकता पड़ती है। *शिव-आगम* अर्थात् शिव-आराधना विभि सम्बन्धी ग्रन्थ के अनुसार इसकी भेंट भी चढ़ाई जाती है।

ब्रह्म च ब्राह्मणांश्चैव यद्वयं परिनिन्दथ ।  
सेतुं विधारणं पुंसामतः पाषण्डमाश्रिताः ॥ ३० ॥

#### शब्दार्थ

ब्रह्म—वेद; च—तथा; ब्राह्मणान्—ब्राह्मणों को; च—तथा; एव—निश्चय ही; यत्—क्योंकि; यूयम्—तुम सब; परिनिन्दथ—निन्दा करते हो; सेतुम्—वैदिक सिद्धान्त; विधारणम्—धारण करते हुए; पुंसाम्—मनुष्य जाति का; अतः—इसलिए; पाषण्डम्—नास्तिकता; आश्रिताः—शरण ले रखी है।

भृगु मुनि ने आगे कहा : चूँकि तुम वैदिक नियमों के अनुयायी ब्राह्मणों तथा वेदों की निन्दा करते हो इससे ज्ञात होता है कि तुमने नास्तिकता की नीति अपना रखी है।

तात्पर्य : भृगु मुनि ने नन्दीश्वर को शाप देते हुए कहा कि वे सब इस शाप से नास्तिक तो होंगे ही, किन्तु वे पहले से नास्तिक पद तक गिर चुके थे, क्योंकि उन्होंने मानवीय सभ्यता के परम स्रोत वेदों की निन्दा की थी। गुणों के अनुसार श्रेणियों में विभाजित मानवीय-सभ्यता वर्णाश्रम पर आधारित है, यथा-बुद्धिमान वर्ग, युद्धप्रिय वर्ग, उत्पादक वर्ग तथा श्रमिक वर्ग। वेद सही-सही निर्देश देते हैं कि आत्म-अनुशीलन तथा आर्थिक उन्नति के साथ ही इन्द्रिय-तृप्ति का नियमन कैसे किया जाये जिससे अन्ततः भौतिक कल्मष से छूट कर मनुष्य अपनी वास्तविक आध्यात्मिक पहचान ( अहं ब्रह्मास्मि ) को प्राप्त हो। जब तक मनुष्य सांसारिक कल्मष में रहता है, तब तक वह जलचर से लेकर ब्रह्मा तक अपनी योनियाँ बदलता रहता है, किन्तु इस जगत में तो मनुष्य जीवन सर्वोच्च सिद्धि है। वेद वह मार्ग दिखाते हैं जिससे मनुष्य अगले जीवन में ऊपर उठ सके। ऐसी शिक्षा के लिए वेद माता तुल्य हैं और वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण पिता तुल्य हैं, अतः यदि कोई वेदों तथा ब्राह्मणों की निन्दा करता है, तो वह नास्तिक के स्तर पर गिर जाता है। संस्कृत में नास्तिक शब्द प्रयुक्त हुआ है, जो उस मनुष्य का द्योतक है, जो वेदों में विश्वास नहीं करता और धर्म की कुछ मनगढंत पद्धति का निर्माण करता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है कि बौद्ध धर्म के अनुयायी नास्तिक हैं। अहिंसा के सिद्धान्त की स्थापना के लिए भगवान् बुद्ध ने वेदों को मानने से साफ इनकार किया और बाद में शंकराचार्य ने इस धर्म को भारत में रोका और इसे देश के बाहर निकलने के लिए बाध्य किया। यहाँ पर ब्रह्म च ब्राह्मणान् कहा गया है। ब्रह्म का अर्थ है वेद। अहं ब्रह्मास्मि का अर्थ है “मुझे पूर्ण ज्ञान प्राप्त है।” वेदों का कथन है कि मनुष्य को अपने आपको ब्रह्म समझना चाहिए क्योंकि वह वास्तव में ब्रह्म है। यदि ब्रह्म अर्थात् वैदिक ज्ञान की निन्दा की जाये और वैदिक ज्ञान के ज्ञाता ब्राह्मणों की निन्दा की जाये तो फिर यह मानवीय

सभ्यता कहाँ रहेगी? भृगु मुनि ने कहा, “ऐसा नहीं है कि तुम लोग मेरे शाप से नास्तिक बनोगे, तुम तो पहले से नास्तिक हो, इसीलिए तुम निन्दनीय हो।”

एष एव हि लोकानां शिवः पन्थाः सनातनः ।  
यं पूर्वं चानुसन्तस्थुर्यत्प्रमाणं जनार्दनः ॥ ३१ ॥

#### शब्दार्थ

एषः—वेद; एव—निश्चय ही; हि—क्योंकि; लोकानाम्—समस्त लोगों का; शिवः—कल्याणकारी; पन्थाः—पथ; सनातनः—शाश्वत; यम्—जो (वैदिक पथ); पूर्वं—भूतकाल में; च—तथा; अनुसन्तस्थुः—दृढ़तापूर्वक पालित होता था; यत्—जिसमें; प्रमाणम्—साक्ष्य; जनार्दनः—जनार्दन।

वेद मानवीय सभ्यता के कल्याण की प्रगति हेतु शाश्वत विधान प्रदान करने वाले हैं जिसका प्रीचीन काल में दृढ़ता से पालन होता रहा है। इसका सशक्त प्रमाण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् स्वयं हैं, जो जनार्दन अर्थात् समस्त जीवात्माओं के शुभेच्छु कहलाते हैं।

तात्पर्य : भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने दावा किया है कि वे सभी प्रकार के प्राणियों के जनक हैं। कुल मिलाकर ८४,००,००० योनियाँ हैं और श्रीकृष्ण अपने को इन सबका जनक कहते हैं। चूँकि जीवात्माएँ भगवान् के अंशरूप हैं, अतः वे भगवान् की सन्तानें हैं। चूँकि उन्हें गुमान है कि वे भौतिक प्रकृति को वश में कर सकते हैं, भगवान् ने उनके हितार्थ उन्हें वेद प्रदान किये हैं। इसीलिए वेद अपौरुषेय कहलाते हैं, क्योंकि वे मनुष्यों या देवताओं द्वारा नहीं लिखे गए, यहाँ तक कि ब्रह्मा, जो आदि जीव हैं, वे भी वेदों के रचयिता नहीं हैं। इस भौतिक जगत के ही एक सजीव प्राणी होने के कारण वे न तो वेदों की रचना कर सकते हैं और न स्वतंत्र रूप से उनके विषय में कुछ कह सकते हैं। इस संसार की प्रत्येक जीवात्मा में चार अवगुण पाये जाते हैं—त्रुटि करना, एक वस्तु को दूसरी समझना, धोखा देना तथा इन्द्रियों से अपूर्ण होना। किन्तु वेद इस भौतिक संसार के किसी सजीव प्राणी द्वारा रचित नहीं हैं, अतः वे अपौरुषेय कहलाते हैं। कोई भी वेदों का इतिहास नहीं बता सकता। निस्सन्देह, आधुनिक मानवीय सभ्यता का कोई तिथिवार इतिहास नहीं है और तीन हजार वर्ष से पूर्व का भी वास्तविक इतिहास प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। किसी ने आज तक यह शोध नहीं की कि वेद कब लिखे गये, क्योंकि वे इस संसार के किसी सजीव प्राणी द्वारा नहीं लिखे गये। अन्य सभी ज्ञानपद्धतियाँ दोषपूर्ण हैं, क्योंकि वे इसी भौतिक संसार के प्राणियों या देवताओं द्वारा रचित या उच्चरित

हैं। किन्तु *भगवद्गीता* अपौरुषेय है, क्योंकि इसे इस भौतिक सृष्टि के किसी मनुष्य या देवता ने नहीं कहा, इसको श्रीकृष्ण ने कहा है, जो इस भौतिक सृष्टि से परे हैं। इसे शंकराचार्य जैसे उद्भट विद्वानों ने स्वीकार किया है, रामानुजाचार्य तथा मध्यवाचार्य जैसे अन्य आचार्यों की तो बात ही छोड़ दें। शंकराचार्य ने स्वीकार किया है कि नारायण तथा कृष्ण दिव्य हैं और भगवान् श्रीकृष्ण ने भी *भगवद्गीता* में परिपुष्टि की है—*अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते*—मैं प्रत्येक वस्तु का मूल हूँ, प्रत्येक वस्तु मुझी से उद्भूत है। यह भौतिक सृष्टि जिसमें ब्रह्मा, शिव तथा सभी देवता सम्मिलित हैं, उन्हीं भगवान् द्वारा उत्पन्न की गई है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु उन्हीं से उद्भूत है। वे यह भी कहते हैं कि मुझे समझने के लिए ही सारे वेद हैं (*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*)। वे ही मूल *वेदवित्* (वेदों के ज्ञाता) तथा *वेदान्तकृत* (वेदान्त के संकलनकर्ता) हैं। वेदों के संकलनकर्ता ब्रह्मा नहीं हैं।

*श्रीमद्भागवत* के प्रारम्भ में कहा गया है—*तेने ब्रह्महृदा*—भगवान् ने ब्रह्मा के हृदय में वैदिक ज्ञान का उपदेश दिया। वैदिक ज्ञान चारों दोषों—त्रुटि, मोह, प्रवंचना तथा अपूर्णता—से रहित है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि इसे भगवान् जनार्दन ने कहा और अनादि काल से, ब्रह्मा से प्रारम्भ होकर आज तक, उसका अनुगमन किया जा रहा है। अनादि काल से भारत की सुसंस्कृत जनता वैदिक धर्म का पालन करती आ रही है, कोई भी वैदिक धर्म के इतिहास को बता नहीं सकता। अतः यह सनातन है और यदि वेदों की निन्दा की जाती है, तो वह नास्तिकता है। वेदों को *सेतु* कहा गया जिसका अर्थ है 'पुल'। यदि कोई आत्मतत्त्व प्राप्त करना चाहता है, तो उसे अज्ञानता का सागर पार करना होता है। वेद ही वह सेतु (पुल) हैं जिससे इस विशाल सागर को पार किया जा सकता है।

वेदों में बताया गया है कि गुण तथा कर्म के अनुसार किस प्रकार मानव जाति को चार वर्गों में विभाजित किया गया है। यह वर्गीकरण अत्यन्त वैज्ञानिक और सनातन है, क्योंकि कोई इसका इतिहास नहीं बता सकता। वर्ण तथा आश्रम प्रणाली को कोई रोक नहीं सकता। उदाहरणार्थ, कोई ब्राह्मण नाम को स्वीकार करे अथवा नहीं, किन्तु समाज में एक बुद्धिमान वर्ग है, जो आध्यात्मिक ज्ञान तथा दर्शन में रुचि रखता है। इसी प्रकार से एक ऐसा वर्ग है, जो प्रशासन चलाने तथा अन्यो पर शासन करने में रुचि रखता है। वैदिक प्रणाली में इन सैनिक मनोवृत्ति वाले लोगों को क्षत्रिय कहा जाता है। इसी प्रकार

से सर्वत्र मनुष्यों का एक ऐसा वर्ग है, जो आर्थिक विकास, व्यापार, उद्योग और अर्थोपार्जन में रुचि रखता है, जिन्हें वैश्य कहते हैं। एक ऐसा भी वर्ग है, जो न तो बुद्धिमान है, न पराक्रमी है और न उसमें आर्थिक विकास करने की क्षमता है। वह केवल अन्यो की सेवा कर सकता है। इन्हें शूद्र या श्रमिक वर्ग कहते हैं। यह प्रणाली सनातन है—यह अनन्त काल से चली आ रही है और इसी प्रकार आगे भी चलती रहेगी। विश्व की कोई भी शक्ति इसे रोक नहीं सकती। अतः सनातन धर्म शाश्वत है और वैदिक नियमों का पालन करते हुए कोई भी मनुष्य आध्यात्मिक जीवन के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच सकता है।

कहा जाता है कि पहले साधु पुरुष इस प्रणाली का अनुसरण करते थे, अतः वैदिक प्रणाली के अनुगमन का अर्थ हुआ समाज के आदर्श शिष्टाचार का पालन। किन्तु शिव के अनुयायी समस्त मानवीय शिष्टाचार के विरुद्ध हैं, क्योंकि वे मद्यपान करने वाले, नशीला एवं विषयी जीवन बिताने वाले, स्नान न करने वाले तथा गाँजा पीने वाले हैं। निष्कर्ष यह निकला कि जो व्यक्ति वैदिक नियमों के प्रति विद्रोह करते हैं, वे स्वयं इसके प्रमाण हैं कि वेद आधिकारिक हैं, क्योंकि वेदों का पालन न करने से ही वे पशुवत् बनते हैं। ऐसे पाशविक व्यक्ति ही साक्षात् प्रमाण हैं कि वैदिक नियम सर्वोच्च हैं।

तद्ब्रह्म परमं शुद्धं सतां वर्त्म सनातनम् ।

विगर्ह्य यात पाषण्डं दैवं वो यत्र भूतराट् ॥ ३२ ॥

#### शब्दार्थ

तत्—वह; ब्रह्म—वेद; परमम्—परम; शुद्धम्—शुद्ध; सताम्—साधु पुरुषों का; वर्त्म—पथ; सनातनम्—शाश्वत; विगर्ह्य—निन्दा करके; यात—जाओ; पाषण्डम्—नास्तिकता को; दैवम्—देव; वः—तुम सबका; यत्र—जहाँ; भूत-राट्—भूतों के स्वामी।

ऐसे वेदों के नियमों की निन्दा करके, जो सत्पुरुषों के शुद्ध एवं परम पथ-रूप हैं, अरे भूतपति शिव के अनुयायियों तुम, निस्सन्देह नास्तिकता के स्तर तक जाओगे।

तात्पर्य : शिवजी को यहाँ पर भूतराट् कहा गया है। प्रेत तथा तमोगुण से युक्त लोग भूत कहलाते हैं, अतः भूतराट् का अर्थ हुआ ऐसे प्राणियों का सरदार जो प्रकृति के निम्नतम गुणों से युक्त है। भूत का दूसरा अर्थ है कोई भी जन्मा जीव, अतः इस भाव में शिव को इस भौतिक जगत का पिता माना जा

सकता है। किन्तु यहाँ पर भृगु मुनि का अभिप्राय निकृष्ट प्राणियों के सरदार से है। निकृष्ट वर्ग के प्राणियों की विशेषताओं का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है—वे नहाते नहीं, बड़ी-बड़ी जटाएँ रखते हैं और मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं। भूतराट् के अनुयायियों द्वारा ग्रहण किये गये पथ की तुलना में वैदिक प्रणाली निश्चित रूप से सर्व-श्रेष्ठ है क्योंकि इससे लोगों को मानवीय सभ्यता के चरम लक्ष्य, आध्यात्मिक जीवन, की प्राप्ति होती है। यदि कोई वैदिक नियमों को नकारता है या उनकी निन्दा करता है, तो वह नास्तिकता के निम्न स्तर तक गिर जाता है।

मैत्रेय उवाच

तस्यैवं वदतः शापं भृगोः स भगवान्भवः ।  
निश्चक्राम ततः किञ्चिद्विमना इव सानुगः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; तस्य—उसका; एवम्—इस प्रकार; वदतः—कहते हुए; शापम्—शाप; भृगोः—भृगु का; सः—वह; भगवान्—सर्व ऐश्वर्यों का स्वामी; भवः—शिव; निश्चक्राम—चला गया; ततः—वहाँ से; किञ्चित्—कुछ-कुछ; विमनाः—खिन्न; इव—सदृश; स-अनुगः—अपने शिष्यों सहित।

मैत्रेय मुनि ने कहा : जब शिवजी के अनुयायियों तथा दक्ष एवं भृगु के पक्षधरों के बीच शाप-प्रतिशाप चल रहा था, तो शिवजी अत्यन्त खिन्न हो उठे और बिना कुछ कहे अपने शिष्यों सहित यज्ञस्थल छोड़कर चले गये।

तात्पर्य : यहाँ पर शिवजी के सर्वोत्कृष्ट चरित्र का वर्णन हुआ है। दक्ष तथा शिव के पक्षधरों के मध्य शाप-प्रतिशाप के बावजूद सर्वोच्च वैष्णव होने के कारण वे इतने गम्भीर बने रहे कि वे एक शब्द भी नहीं बोले। वैष्णव सदा सहिष्णु होता है और शिव तो सर्वोच्च वैष्णव माने जाते हैं, अतः यहाँ पर जिस प्रकार शिवजी का चरित्र-चित्रण किया गया है, वह अत्युत्तम है। वे इसीलिए खिन्न थे क्योंकि वे जानते थे कि उनके अनुयायी तथा दक्ष के लोग वृथा ही एक दूसरे को शाप दे रहे हैं। उनकी दृष्टि में कोई ऊँचा या नीचा न था क्योंकि वे वैष्णव थे। भगवद्गीता में (५.१८) कहा गया है—  
पंडिताः समदर्शिनः—अर्थात् जो पूर्णरूपेण पंडित होता है, वह सबों को आध्यात्मिक स्तर से देखता है, उसे कोई छोटा या बड़ा नहीं दिखता। अतः शिवजी के पास एकमात्र यहीं विकल्प रह गया था कि अपने शिष्य नन्दिश्वर तथा भृगु मुनि को परस्पर शाप देने से रोकने के लिए उस स्थान को ही छोड़ कर

चले जाँए।

तेऽपि विश्वसृजः सत्रं सहस्रपरिवत्सरान् ।  
संविधाय महेष्वास यत्रेज्य ऋषभो हरिः ॥ ३४ ॥

#### शब्दार्थ

ते—वे; अपि—भी; विश्व-सृजः—ब्रह्माण्ड के जनक; सत्रम्—यज्ञ; सहस्र—एक हजार; परिवत्सरान्—वर्ष; संविधाय—सम्पन्न करते हुए; महेष्वास—हे विदुर; यत्र—जिसमें; इज्यः—पूजनीय, उपास्य; ऋषभः—समस्त देवताओं के प्रमुख देव; हरिः—हरि।

मैत्रेय मुनि ने आगे कहा : हे विदुर, इस प्रकार विश्व के सभी जनकों ( प्रजापतियों ) ने एक हजार वर्ष तक यज्ञ किया क्योंकि भगवान् हरि की पूजा की सर्वोत्तम विधि यज्ञ ही है।

तात्पर्य : यहाँ यह स्पष्ट कहा गया है कि विश्व के धुरंधर पुरुष अर्थात् समस्त प्रजा के जनक, प्रजापति यज्ञ द्वारा भगवान् को प्रसन्न करने में रुचि रखते हैं। भगवान् भी *भगवद्गीता* (५.२९) में कहते हैं—*भोक्तारं यज्ञतपसाम्।* मनुष्य सिद्धि के लिए यज्ञ तथा तप करने में लगा रह सकता है, किन्तु इन सबका प्रयोजन परमेश्वर को प्रसन्न रखना है। यदि कोई इन्हें आत्मतुष्टि के लिए करता है, तो वह पाखंड अथवा नास्तिकता से ग्रस्त है; किन्तु यदि इन्हें परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिए सम्पन्न किया जाता है, तो वैदिक नियमों का पालन होता है। वहाँ पर एकत्र सभी मुनियों ने एक हजार वर्षों तक यज्ञ किया।

आप्लुत्यावभृथं यत्र गङ्गा यमुनयान्विता ।  
विरजेनात्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ययुस्ततः ॥ ३५ ॥

#### शब्दार्थ

आप्लुत्य—स्नान करके; अवभृथम्—यज्ञ सम्पन्न करने के पश्चात् किया गया स्नान; यत्र—जहाँ; गङ्गा—गंगा नदी; यमुनया—यमुना नदी से; अन्विता—मिली हुई; विरजेन—बिना किसी छूत से; आत्मना—मन से; सर्वे—सभी; स्वम् स्वम्—अपने-अपने; धाम—निवास स्थान; ययुः—चले गये; ततः—वहाँ से।

हे धनुषबाणधारी विदुर, सभी यज्ञकर्ता देवताओं ने यज्ञ समाप्ति के पश्चात् गंगा तथा यमुना संगम में स्नान किया। ऐसा स्नान अवभृथ स्नान कहलाता है। इस प्रकार से मन से शुद्ध होकर वे अपने-अपने धामों को चले गये।

तात्पर्य : पहले दक्ष और फिर शिव के यज्ञ-स्थल से चले जाने के पश्चात् भी यज्ञ बन्द नहीं हुआ। मुनियों ने परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिए अनेक वर्षों तक यज्ञ को चालू रखा। शिव तथा दक्ष के न



होने से यज्ञ विध्वंस नहीं हुआ। मुनिजन अपना कार्य चालू रखे रहे। दूसरे शब्दों में, यह माना जा सकता है कि यदि कोई शिव तथा ब्रह्मा जैसे देवताओं की पूजा न भी करे तो भी वह भगवान् को प्रसन्न कर सकता है। *भगवद्गीता* (७.२०) में भी उसकी पुष्टि हुई है—*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।* जो लोग काम तथा इच्छा से प्रेरित हैं, वे लाभान्वित होने के लिए देवताओं के पास जाते हैं। *भगवद्गीता* में *नास्ति बुद्धिः* शब्दों का साभिप्राय प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ है, “वे व्यक्ति जिन्होंने ज्ञान या बुद्धि खो दी है।” केवल ऐसे ही व्यक्ति देवताओं की परवाह करते हैं और उनके पास जाकर लाभ उठाना चाहते हैं। निस्सन्देह, इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें देवताओं का आदर नहीं करना चाहिए; किन्तु उनकी पूजा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ईमानदार व्यक्ति सरकार के प्रति श्रद्धावान् होता है, किन्तु उसे सरकारी कर्मचारियों को घूस देने की आवश्यकता नहीं है। घूस अवैध है। यदि कोई सरकारी कर्मचारी को घूस नहीं देता तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वह उसका आदर नहीं करता। इसी प्रकार जो व्यक्ति परमेश्वर की दिव्य प्रेमाभक्ति में अनुरक्त है उसे न तो किसी देवता की पूजा करने की आवश्यकता है, न ही वह किसी प्रकार किसी देवता का अनादर करने की प्रवृत्ति रखता है। *भगवद्गीता* (९.२३) में अन्यत्र कहा गया है—*येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।* भगवान् कहते हैं कि यदि कोई देवताओं को पूजता है, तो वह मेरी भी पूजा करता है, किन्तु वह *अविधिपूर्वकम्* अर्थात् विधि-विधानों का पालन किये बिना पूजा करता है। विधान यह है कि भगवान् की पूजा की जाये। देवताओं की पूजा अप्रत्यक्षतः भगवान् की पूजा हो सकती है, किन्तु यह विधिपूर्वक नहीं कही जायेगी। परमेश्वर की पूजा करने से सभी देवताओं की स्वतः पूजा हो जाती है, क्योंकि वे परम पूर्ण के अंश हैं। यदि कोई वृक्ष की जड़ को सींचता है, तो वृक्ष के सभी भाग—यथा पत्तियाँ तथा शाखाएँ—स्वतः तुष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार यदि कोई उदर को भोजन प्रदान करता है, तो शरीर के सभी अंग—हाथ, पाँव, अँगुलियाँ—भोजन प्राप्त करते हैं। इस प्रकार श्रीभगवान् की पूजा द्वारा समस्त देवताओं को प्रसन्न रखा जा सकता है, किन्तु सभी देवताओं की पूजा करने से परमेश्वर की पूजा पूर्ण नहीं होती। फलतः देवताओं की पूजा अवैध है और शास्त्रीय नियमों का अनादर है।

इस कलिकाल में देवयज्ञ कर पाना असम्भव है। फलतः इस युग के लिए *श्रीमद्भागवत* में

संकीर्तन यज्ञ की संस्तुति की गई है— यज्ञै संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ( भागवत् ११.५.३२)—इस युग में बुद्धिमान व्यक्ति हरे कृष्ण के संकीर्तन द्वारा समस्त प्रकार के यज्ञों की पूर्ति करता है। तस्मिन् तुष्टे जगत् तुष्टः—जब भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं, तो उनके अंशरूप समस्त देवता भी प्रसन्न होते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध के अन्तर्गत “दक्ष द्वारा शिव को शाप” नामक दूसरे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।